योगशास्त्र में मनोचिकित्सा

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के शोधार्थी डॉ० हेमाद्रि कुमार साव द्वारा सन् २०१० में योगशास्त्र में मनोचिकित्सा के संदर्भ में एक शोध-अध्ययन पूरा किया गया। इस शोध-अध्ययन का विषय था—"**योगशास्त्र में मनोचिकित्सा : एक सैद्धांतिक अध्ययन**। यह अध्ययन विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के संरक्षण एवं मार्गदर्शन में पूर्ण किया गया। इस सैद्धांतिक शोध-अध्ययन में कुल छह अध्याय हैं—

प्रथम अध्याय है—विषय प्रवेश। इस अध्याय में योग की ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का परिचय देते हुए मनोविज्ञान एवं योगशास्त्र जैसे—अथर्ववेद, आयुर्वेद, योगदर्शन, भगवद्गीता, रामचरितमानस आदि में वर्णित मनश्चिकित्सा के सूत्र संकेतों का वर्णन किया गया है। मनोविज्ञान के अंतर्गत प्रचलित नैदानिक व उपचार विधियाँ दो भागों में वर्गीकृत हैं—जैविक चिकित्सा एवं मनोचिकित्सा। जैविक चिकित्सा के अंतर्गत विद्युत आघात चिकित्सा, मनोशल्य चिकित्सा और रसायन चिकित्सा आती हैं; जबकि मनोचिकित्सा के अंतर्गत मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा व्यक्ति की मानसिक, व्यवहारगत एवं मनोकायिक समस्याओं के समाधान एवं उपचार की प्रक्रियाएँ शामिल हैं। अथर्ववेद जो कि योगशास्त्र में मनोचिकित्सा का एक प्रमुख ग्रंथ है, में प्रमुख रूप से अथर्वणिक मानस चिकित्सा व अन्य विधियों में भौतिक चिकित्सा व मनुष्यज चिकित्सा का वर्णन है।

आयुर्वेद में मनोचिकित्सा के तीन प्रकार हैं—दैव्यव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय और सत्त्वावजय। योगदर्शन में १४ प्रकार के विघ्न-विक्षेप लक्षणों को बताया गया है, जो कि रोगग्रस्त मन के लक्षण हैं और इन विघ्नों से मुक्ति का उपाय मंत्रजप को बताया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में मन की व्याधियों को श्रीकृष्ण ने 'ज्वर' कहा है और इन व्याधियों के उपचार के संदर्भ में कहा गया है कि मन जितना-जितना परमात्मा की ओर झुकता जाएगा, उतनी ही मन में शांति आती जाएगी। जितनी शांति आएगी, उतना ही मन प्रसन्न हो जाएगा और प्रसन्नता आने पर मन का उद्वेग मिट जाएगा। श्रीरामचरितमानस में मानस रोगों की चर्चा मुख्यत: काकभुशुंडि-गरुड़ प्रसंग में है, जिसमें सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) को माना है और इसका उपचार बताया गया है कि सद्गुरुरूपी वैद्य के वचन में विश्वास हो, संयोग (परहेज) के रूप में विषयों की आशा न हो, इसके साथ श्री रघुनाथ जी की भक्ति हो, यह भक्ति संजीवनी जड़ी के समान है, श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान है और इस प्रकार के संयोग होने पर वे रोग भी नष्ट हो जाते हैं, जो करोड़ों प्रयत्नों से भी नहीं जाते।

द्वितीय अध्याय है—मन एवं मानसिक स्वास्थ्य। इस अध्याय में मन का अर्थ, मन का स्वरूप और मनोवैज्ञानिक इतिहास में मन के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करने के साथ मन की दार्शनिक अवधारणाओं का विवेचन है, जिसमें भारतीय दर्शन, उपनिषद्, भगवद्गीता, आयुर्वेद आदि प्रमुख हैं। इसके साथ ही आधुनिक संदर्भ में मानसिक स्वास्थ्य क्या है? इसे प्रभावित करने वाले घटक कौन-कौन से हैं? मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की क्या विशेषताएँ हैं और यौगिक एवं आयुर्वेदिक दृष्टि में मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणाएँ क्या हैं? यह स्पष्ट किया गया है। इस अध्याय में शरीर और मन के अंतर्संबंधों का भी वर्णन है।

'मन' शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार—'मन्यते ज्ञायते बुद्ध्यतेऽनेनेति मन:।' अर्थात जिसके द्वारा जाना जाता है या ज्ञान प्राप्त किया जाता है अथवा बोध होता है, वह मन कहलाता है, परंतु मनोविज्ञान में मन का तात्पर्य आत्मन्, स्व या व्यक्तित्व से है। मन, मानसिक स्वास्थ्य का मूल आधार है। शरीर की तुलना में मन का मूल्य हजारों गुना अधिक है। शरीर का स्वरूप स्थूल होने के कारण इसके रोग एवं व्याधियों को सरलता से समझा जा सकता है और तदनुसार उपचार भी किया जा सकता है, किंतु मन की प्रकृति सूक्ष्म होने के कारण मन की विकृतियाँ व मानसिक रोग दिखाई नहीं पड़ते, अत: इनका उपचार भी सरल नहीं होता।

यौगिक दृष्टि में मानसिक अस्वास्थ्य के मूल कारण पंचक्लेश हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। मनुष्य के दु:ख का कारण भी ये पंचक्लेश ही हैं और इन क्लेशों का मूल कारण अविद्या है। योगदर्शन में अविद्या और उससे उत्पन्न क्लेशों के छूटने का व्यावहारिक उपाय भी बताया गया है। मन के स्वरूप की विवेचनाओं के आधार पर भिन्न-भिन्न तरह से भारतीय और पश्चिमी सिद्धांतों में मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित किया गया है। मनोरोगों से मुक्त मानसिक अवस्था को मानसिक स्वास्थ्य माना गया है, परंतु आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान समायोजन की क्षमता को मानसिक स्वास्थ्य की मुख्य कसौटी मानता है। कुछ आधुनिक मनोविश्लेषकों ने इसे मानसिक और भावनात्मक आवेगों के संतुलन की क्षमता कहा है। यौगिक दृष्टि में मानसिक स्वास्थ्य को बड़ा व्यापक अर्थ प्रदान किया गया है। चित्त की पाँच अवस्थाओं में से अंतिम दो—एकाग्र व निरुद्ध अवस्था को मानसिक स्वास्थ्य के अंतर्गत माना गया है। अत: यौगिक दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य की आदर्श स्थिति समाधि के रूप में परिभाषित की गई है।

तृतीय अध्याय है—व्यक्तित्व। इस अध्याय के अंतर्गत व्यक्तित्व की पाश्चात्य एवं भारतीय अवधारणाओं को प्रस्तुत करते हुए यौगिक दृष्टि पर आधारित एक नए व्यक्तित्व सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। व्यक्तित्व को अनेक तरह से परिभाषित करने के साथ-साथ इसकी संरचना एवं विकास के क्षेत्र में पश्चिमी मनोविज्ञान में व्यापक प्रयास एवं अध्ययन हुए हैं। फ्रायड, मरे, युंग, कैटेल जैसे मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व सिद्धांतों द्वारा व्यक्तित्व एवं व्यवहार के अनेक अनछुए पहलुओं को उजागर किया है, परंतु मनोविज्ञान का यह संपूर्ण अध्ययन मानवीय व्यवहार, विचार एवं भाव-संवेग की क्रिया-प्रतिक्रिया पर आधारित है; जबकि भारतीय योगदृष्टि में व्यक्तित्व संरचना में संस्कार एवं चेतना भी शामिल है। व्यक्तित्व संबंधी अध्ययन में पश्चिम की मूलदृष्टि मनोजैविक और मनोसामाजिक आधार पर केंद्रित रही है; जबकि भारतीय दर्शन एवं योग की दृष्टि अध्यात्मवाद पर आधारित रही है। इसमें संस्कारों के शोधन और चेतना के विकास को व्यक्तित्व विकास की मुख्य कसौटी माना गया है। योगदर्शन के व्यक्तित्व संप्रत्यय को पश्चिमी संप्रत्ययों की तुलना में समग्र कहा जा सकता है; क्योंकि इसकी व्याख्या व्यवहार, विचार व भाव से आगे जाकर चित्त, मन व चेतना के समन्वय के आधार पर की गई है।

चतुर्थ अध्याय है—मनोरोग। इस अध्याय में मनोरोगों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा का वर्णन करने के साथ आधुनिक मनोविज्ञान एवं योगशास्त्र में वर्णित विभिन्न प्रकार के मनोरोगों एवं उनके कारणों का विस्तृत विवेचन किया गया है। पूर्व वैज्ञानिक काल से लेकर आधुनिककाल तक मनोरोगों का अध्ययन होता आया है। मनोरोग की स्थिति में व्यक्तित्व में अनेक तरह की विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे व्यक्ति की समायोजन क्षमता घट जाती है और वह समाज विरोधी व्यवहार करने लगता है तथा अन्य व्यक्तियों के व्यवहार में भी अवरोध उत्पन्न करता है।

व्यवहार में दिखाई देने वाली विकृतियों के आधार पर ही मनोरोगों को कई प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है। आयुर्वेदीय चिकित्सा में मानस रोगों को सत् और रज से उत्पन्न बताया गया है। आधुनिक मनोविज्ञान में मनोरोगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है—१. मनस्ताप, २. मनोविक्षिप्तता एवं ३. व्यक्तित्व विकार। यौगिक दृष्टि से मनोरोगों को 'योग अंतरायों' के रूप में वर्गीकृत किया गया है और इन मनोरोगों के तीन कारण मुख्य रूप से बताए गए हैं—१. पंचक्लेश, २. अक्लिष्ट वृत्तियाँ, ३. संस्कार। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार, मनोरोग अचानक पैदा नहीं होते। इनके पैदा होने का एक निश्चित कारण होता है, जिसके अंतर्गत तीन तरह के दृष्टिकोण हैं—जैविक, सामाजिक एवं मनोसामाजिक दृष्टिकोण।

पंचम अध्याय है—निदान एवं मनश्चिकित्सा। निदान से तात्पर्य किसी रोग की पहचान तथा इसका रोगी की अन्य अवस्थाओं के साथ संबंध ज्ञात करने से है। आयुर्विज्ञान में निदान शारीरिक लक्षणों के आधार पर किया जाता है; जबकि नैदानिक मनोविज्ञान में मनोविकृतियों का निदान मनोवैज्ञानिक लक्षणों के आधार पर किया जाता है। योग चिकित्सा की रोग निदान प्रक्रिया में रोगी व्यक्ति के सामान्य लक्षणों की अपेक्षा यौगिक दृष्टि द्वारा उसके जीवन को समग्रता एवं परिपूर्णता में देखने का प्रयास किया जाता है। इसी कारण इसे आयुर्वेद निदान-पंचक की भाँति आध्यात्मिक निदान-पंचक कहा गया है, जिसके अंतर्गत आध्यात्मिक चिकित्सक रोगी के व्यक्तित्व के पाँच तत्त्वों का परीक्षण करते हैं—व्यवहार, चिंतन, संस्कार, प्रारब्ध एवं पूर्व जन्म के दोष-दुष्कर्म।

साइकोथेरेपी अर्थात मनश्चिकित्सा, जो रोगी एवं चिकित्सक के बीच एक मनोचिकित्सकीय संबंध पर आधारित है। इसका उद्देश्य सामान्यत: रोगी के मानसिक एवं भावनात्मक अवरोधों को दूर कर उसमें आत्म-बोध, विश्वास, सामर्थ्य और परिपक्वता के गुणों का विकास करना है। नैदानिक मनोविज्ञान में मनश्चिकित्सा की बहुत-सी विधियाँ प्रचलित हैं। इनमें से प्रमुख हैं— १. मनोगतिकी चिकित्सा (साइकोडाइनामिक थेरेपी) २. व्यवहार चिकित्सा (विहेवियर थेरेपी) ३. संज्ञानात्मक व्यावहारात्मक चिकित्सा ४. मानवतावादी अस्तित्ववादी चिकित्सा ५. सामूहिक चिकित्सा आदि।

योगशास्त्र में मनश्चिकित्सा की विधि मनोआध्यात्मिक है। अथर्ववेद में मनोरोगों के उपचार के लिए चिकित्सा-विधियों का एक विस्तृत वर्गीकरण है—जो इस तरह है—अथर्वणी (मानस चिकित्सा), आंगिरसी (शरीर द्रव्य और रस से चिकित्सा), दैवीय (दैवी स्वरूप चिकित्सा), मनुष्यज (मानव द्वारा निर्मित औषधियों द्वारा चिकित्सा)। इनमें सबसे प्रमुख है—अथर्वणिक मानस चिकित्सा, जिसके पहले चरण में मंत्र विद्या को मानस चिकित्सा की एक मुख्य तकनीक के रूप में अपनाया गया है। संकल्प, सादेश, संवशीकरण, कर्मकांड एवं ब्रह्मकवच— ये पाँच मंत्र विद्या द्वारा मानस चिकित्सा की विधियाँ हैं। इसके बाद के चरणों में उतरण (ट्रांसफेरेन्स), आश्वासन और उपचार (एश्योरेन्स, डिसेन्सिटाइजेशन, रिएजुकेशन), दैवीय हवन चिकित्सा, प्रायश्चित (कन्फेशन), तप (पीनैन्स), बलिदान (सैक्रीफाइस) आदि प्रमुख हैं। अथर्वणिक चिकित्सा का उपयोग आयुर्वेदीय मनश्चिकित्सा में भी किया जाता है। इस तरह योगदर्शन की चिकित्सा विधि समग्र है। इसमें आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक—इन त्रितापों के निवारण का विधान है। महर्षि पतंजलि ने मन के विक्षेपों-विघ्नों को दूर करने हेतु मंत्रजप को सबसे उपयुक्त साधन बताया है। इसके साथ ही योग मनोचिकित्सा में चित्त की विभिन्न अवस्थाओं के आधार पर मानस चिकित्सा का एक नवीन व समग्र संप्रत्यय प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय है—उपसंहार। इस अध्याय में उपर्युक्त सभी अध्यायों के सार-संक्षेप को प्रस्तुत करने के साथ ही मनश्चिकित्सा के क्षेत्र में योग मनोचिकित्सा का एक नया सिद्धांत एवं उसकी प्रासंगिकता को प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार इस शोध-अध्ययन में आधुनिक मनोविज्ञान की मनश्चिकित्सकीय अवधारणाओं का समीक्षात्मक अध्ययन करते हुए योगशास्त्रों पर आधारित मनोचिकित्सा का समग्र सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि साधक दो प्रकार के होते हैं— "एक बंदर के बच्चे जैसे और दूसरे, बिल्ली के बच्चे जैसे। बंदर का बच्चा स्वयं ही माँ को पकड़े रहता है तो इसी तरह कुछ साधक सोचते हैं, हमें इतना जप करना चाहिए, इतनी देर तक ध्यान करना चाहिए, इतनी तपस्या करनी चाहिए तब ईश्वर मिलेंगे, पर बिल्ली का बच्चा खुद अपनी माँ को नहीं पकड़ता। वह तो बस, पड़ा हुआ 'मीऊँ-मीऊँ' करके माँ को पुकारता है और उसकी माँ उसे चाहे जहाँ रख दे। इसी तरह कोई साधक स्वयं हिसाब करके साधन-भजन नहीं कर सकते कि इतना जप करूँगा, इतना ध्यान करूँगा। वह केवल व्याकुल हो कर, रो-रोकर उन्हें पुकारता है। उसका रोना सुनकर वे फिर नहीं रह सकते और ईश्वर दर्शन दे ही देते हैं।"